Sampreshan
UGC CARE GROUP 1
https://sampreshan.info/
ISSN: 2347-2979
Vol. 17, Issue No. 1, March 2024

# वैदिक यज्ञ का स्वरूप एवं उसकी प्रासंगिकता

**Dr. Rishika Verma**
Assistant Professor
Philosophy Department
Hemvati Nandan Bahuguna Garhwal University,
Srinagar Garhwal Uttarakhand, A Central Univeristy
Email id : rishika.verma75@gmail.com

हवन–यज्ञ शुभ कर्मों में से एक है। यह एक सकाम कर्म है। हवन–यज्ञ किसी–न–किसी कामना की सिद्धि के लिए किया जाता है। इस शुभ कर्म का प्रारम्भ वैदिक युग से ही हुआ है। आज तक इसकी परम्परा चलती आ रही है। प्राचीन काल के ऋषि समाधि अवस्था प्राप्त वैज्ञानिक रहे हैं। उन्होंने अपने अनुभूति के आधार पर एक सरल तथा वैज्ञानिक पद्धति का आविष्कार जनसामान्य को विभिन्न कामनाओं की सिद्धि के लिए किया। इस प्रकार के हवन–यज्ञ वैदिक युग में हमेशा किये जाते रहे हैं। हमारे प्राचीन ग्रन्थों में पुत्रेष्टि यज्ञ, अश्वमेध यज्ञ, गोमेध यज्ञ, राजसूय यज्ञ आदि यज्ञों का वर्णन आता है। त्रेतायुग में यशस्वी सम्राट महाराज दशरथ ने महर्षि श्रृंगी ऋषि के द्वारा पुत्रेष्टि यज्ञ का अनुष्ठान कराया था। परिणाम स्वरूप वृद्धावस्था में राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न जैसे सूर्यवंश में देदीप्यवान् पुत्र रत्न उनको प्राप्त हुए। द्वापरयुग में अश्वमेध, राजसूय, पुण्डरीक आदि यज्ञ सम्पन्न किये गये हैं। इस यज्ञ से यश विश्व भर में प्रकाशमान होता था। इन शुभ कर्मों का व्यापक प्रभाव पूरे विश्व के वायुमण्डल पर पड़ता था।[1]

यज्ञ का वैज्ञानिक आधार है। यह कोई अन्धविश्वास पर टिका हुआ धार्मिक कृत्य नहीं है, प्रत्युत यह एक वैज्ञानिक प्रक्रिया है, जिसका सम्बन्ध धर्म के साथ इसलिए जोड़ दिया गया है कि इसे अनिवार्य रूप से किया जाए और इससे होने वाले लाभों से लाभान्वित हुआ जाए। मानव के जन्म से शरीर त्यागपर्यन्त सोलह संस्कार के साथ यज्ञ आवश्यक अंग में सम्मिलित

Sampreshan
UGC CARE GROUP 1
https://sampreshan.info/
ISSN: 2347-2979
Vol. 17, Issue No. 1, March 2024

है। यजुर्वेद[2] में वर्णन आया है कि यज्ञ में दी हुई आहुति सूक्ष्म होकर तमाम वायुमण्डल में फैल जाती है, अग्नि द्वारा सूक्ष्म पदार्थ सूक्ष्म रूप में परिवर्तित होता है तथा उसके गुण और प्रभाव क्षेत्र दोनों बढ़ जाते हैं। उदाहरण स्वरूप हम सूखी लाल मिर्च खाये तो उसके तीखेपन का अनुभव सिर्फ हमे होता है, लेकिन जब उसे आग में डाल दिया जाता है तो उसका तीखापन सूक्ष्म होकर वायुमण्डल तें दूर–दूर तक जाता है। ठीक उसी तरह हवन–कुण्ड में डाली गई हवन–सामग्री की आहुति पश्चात् उसका प्रभाव औषधि रूप में वायुमण्डल एवं हमारे स्वास्थ्य पर भी पड़ता है। आहुति से अनेकों स्थान तक उसके गुण का प्रभाव फैलता है। इसी तरह गाय का घी यज्ञ की अग्नि में डाला जाता है तो उसका धुँआ परमाणु विकिरण के प्रभाव को कम कर देता है। पर्यावरण, जीवधारियों के अस्तित्व की रक्षा, विकास तथा उन्नति के लिए यज्ञ आवश्यक है। पर्यावरण प्रदूषण आज एक विश्वव्यापी समस्या है इस समस्या से बचने के लिए वैदिक हवन–यज्ञ एक उत्तम पद्धति सिद्ध हो रहा है।

वेदों का मुख्य विषय **'यज्ञ'** ही है। यज्ञों से ही वेद प्रतिष्ठित और मान्य हैं। वेद–मन्त्रों के बिना यज्ञ नहीं हो सकते और यज्ञों के बिना वेद–मन्त्रों का ठीक–ठीक सदुपयोग नहीं हो सकता। अतः स्पष्ट है कि वेद है तो यज्ञ है और यज्ञ है तो वेद है। विष्णुधर्मोत्तर पुराण के **''वेदास्तु यज्ञार्थमभिप्रवृत्ताः[3]''** इस वचन से तथा भगवान मनु के **''दुदोह यज्ञसिद्धयर्थम्''[4]** इस वाक्य से स्पष्ट सिद्ध होता है कि वेदों का प्रादुर्भाव यज्ञों के लिए ही हुआ है। ब्रह्मपुराण में स्पष्ट लिखा है कि यज्ञ सिद्धि के लिए ऋग्वेद, यजुर्वेद ओर सामवेद का निर्माण हुआ है।[5]

**यज्ञ के दो भेद हैं** – एक यज्ञ और दूसरा महायज्ञ। जो अपने ऐहिक तथा पारलौकिक कल्याण के लिये पुत्रेष्टियाग और विष्णृयागादि करते है, उन्हें यज्ञ कहते हैं और जो विश्वकल्याणार्थ पंचमहायज्ञ आदि करते हैं, उन्हें महायज्ञ कहते हैं। यज्ञ और महायज्ञ के स्वरूप तथा इसकी विशेषता का वर्णन महर्षि भारद्वाज ने इस प्रकार किया हैं–

Sampreshan
UGC CARE GROUP 1
https://sampreshan.info/
ISSN: 2347-2979
Vol. 17, Issue No. 1, March 2024

**यज्ञः कर्मसु कौशलम् समष्टि सम्बन्धामहायज्ञः।**

अर्थात् कुशलतापूर्वक जो अनुष्ठान किया जाता है उसे 'यज्ञ' कहते है। पश्चात् समष्टि–सम्बन्ध होने से उसी को महायज्ञ कहते है।

प्रधानतया यज्ञ दो प्रकार के होते हैं– श्रौत और स्मार्त। श्रुति–प्रतिपादित यज्ञों को श्रौतयज्ञ और स्मृति–प्रतिपादित यज्ञों को स्मार्त यज्ञ कहते है। श्रौतयज्ञ में केवल श्रुतिप्रतिपादित मन्त्रों का प्रयोग होता है और स्मार्तयज्ञ में वैदिक, पौराणिक और तान्त्रिक मन्त्रों का प्रयोग होता है।

**यज्ञों के तीन विभाग :–** यज्ञों के तीन विभाग हैं– **कर्मयज्ञ, ज्ञानयज्ञ और उपासना यज्ञ।** षोडश संस्कार, शिक्षा, आहार, वस्त्र, गृह, समाज, राज्य, कृषि, पशुपालन, संगीत, गणित, भूगोल, ज्योतिष, वैद्यक, रसायन, इमारत, यन्त्र, शस्त्र, वाहन और युद्धविद्या आदि पदार्थ और विद्याएँ कर्मयज्ञ से सम्बंध रखती है। ईश्वर, जीव, पुर्नजन्म, कर्मफल, सृष्टि, प्रलय, वर्ण, आश्रम और स्वाध्याय आदि ज्ञानयज्ञ से सम्बन्ध रखते हैं और सदाचार, दया, प्रेम, दर्शन, भक्ति, वैराग्य, योग और समाधि आदि क्रियाएँ उपासना यज्ञ से सम्बन्ध रखती हैं। इन्हीं तीनों प्रकार के यज्ञों में वेदों का लौकिक और पारलौकिक ज्ञान चरितार्थ होता है।

1. **कर्मयज्ञ :–** इस यज्ञ को आर्यों ने बड़ी ही उन्नत दशा में पहुँचाया था। वैदिक ज्ञान के द्वारा यज्ञ से सम्बन्ध रखनेवाले लोगों ने उच्च से उच्च भौतिक विज्ञान में अपनी गति कर ली थी। यद्यपि ब्राह्मण और सूत्रग्रन्थों में इन यज्ञों के अनेकों प्रकार बहुत विस्तार से वर्णित है। परन्तु बीजरूप से अथर्ववेद[6] में कुछ यज्ञों को वर्णन इस प्रकार हैं–

राजसूयं वाजपेयमग्निष्टामस्तध्वरः।
अर्काश्वमेधावुच्छिष्टे जीवबर्हिर्मदिन्तमः।।
अग्न्याधेयमयो दीक्षा कामप्रेश्छन्दसा सह।।

Sampreshan
UGC CARE GROUP 1
https://sampreshan.info/
ISSN: 2347-2979
Vol. 17, Issue No. 1, March 2024

अग्निहोत्रं च श्रद्धा च वषद्कारों व्रतं तपः।।

चतुर्होतार आप्रियश्चातुर्भास्यानि नीविदः।।

इन मन्त्रों में राजसूय, वाजपेय, अग्निष्टोम, अश्वमेध, अग्निहोत्र, अग्न्याधान और चातुर्मास्य का वर्णन आता है। इस वेद का गोपथ ब्राह्मण इन यज्ञों को जो क्रम बतलाता है, उस क्रम में अग्न्याधान, पूर्णाहुति, अग्निहोत्र, दर्शपूर्णमास, आग्रहायण (नवसस्येष्टि), चातुर्मास्य, पशुबन्ध, अग्निष्टोम, राजसूय, वाजपेय, अश्वमेघ, पुरूषमेध, सर्वमेध, दक्षिणावाले यज्ञों को वर्णन है। वहाँ लिखा है कि जो इन यज्ञकर्मों को जानता है, वह यज्ञों के साथ एक आत्मा होकर और एक निवास होकर दिव्य गुणों को पाता है। इन यज्ञों को विवरण इस प्रकार है–

**अग्याधान :–** अग्नीन् आधाय पूर्णाहुत्यायजेत्।[7] अर्थात् पूर्ण आहुति पर्यन्त अग्न्याधान करें। यह अग्न्याधान है।

**अग्निहोत्र :–** अग्नये एव सायं सूर्याय प्रातः एवह वै अग्निहोत्रं जुहोति।[8]

अर्थात् अग्नि के लिए संध्या समय और सूर्य के लिए प्रातःकाल जो हवन किया जाता है, वह अग्निहोत्र है।

**दर्षपूर्णमास :–** सुवर्गाय हि वै लोकाय दर्शपूर्णमासौ इज्येते। [9]

अर्थात् अमावस्या और पूर्णिमा के दिन के हवन हो दर्शपूर्णमास कहते है।

**2. ज्ञानयज्ञ :–** ज्ञानयज्ञ का सम्बन्ध विद्याध्ययन से है। वैदिकों में इसका बड़ा माहात्म्य था। नित्य के यज्ञ महायज्ञों में ब्रह्मयज्ञ सर्वप्रथम है। इस सर्वप्रथम ब्रह्मयज्ञ के विषय में मनु महाराज मनुस्मृति में कहते हैं कि ''आध्ययनं ब्रह्मयज्ञः'' अर्थात् बढ़ना ही ब्रह्मयज्ञ है। द्विजों को चाहिए कि वे नित्य पढ़ावें, क्योंकि उन पर ऋषि ऋण है। परन्तु प्रश्न तो यह है कि बिना पढ़े पढ़ावे क्या? इसलिए अभिप्राय यह निकला कि वे स्वयं नित्य पढ़े। मनुस्मृति में स्वाध्याय के लिए लिखा है कि–

**यः स्वाध्यायमधीयेऽब्दं विधिना नियतः शुचिः।**

Sampreshan
UGC CARE GROUP 1
https://sampreshan.info/
ISSN: 2347-2979
Vol. 17, Issue No. 1, March 2024

**तस्य नित्यं क्षरत्येष पयोदधिधृतं मधु।।**[10]

अर्थात् जो नित्य समय से विधि से एक वर्ष भी स्वाध्याय करता है; उसको स्वाभाविक ही दूध, दधि, धृत और मधु नित्य मिलते है। इसी तरह ब्राह्मण ग्रन्थों में भी लिखा है कि–यद्यद् ह वै अयं छन्दतः स्वाध्यायमधीते तेन तेन ह एव अस्य यज्ञ क्रतुना इष्टं भवति।

**तस्मात् स्वाध्यायोऽध्येतव्यः।**[11]

**एष पन्था एतत् कर्म एतत् ब्रह्म एतत् सत्यम्।**

**तस्मात् न प्रमाद्येत् तत् न अतीत्।**[12]

अर्थात् जितना जितना वह स्वाध्याय करता है, उतना ही उसे यज्ञ का फल प्राप्त होता है। इसलिए स्वाध्याय अवश्य करें। यही लो–परलोक का मार्ग हैं, यही सब कर्तव्यों का कर्तव्य कर्म है, यही सत्य है और यह ब्रह्म–प्राप्ती का उपाय है, इसलिए स्वाध्याय अवश्य करें। गीता में इस ज्ञान यज्ञ के विषय में कहा गया हैं कि–

**श्रेयान्द्रव्यमयाद्यज्ञान्ज्ञानयज्ञः परन्तपः।**

**सर्व कर्माखिलं पार्थ ज्ञाने परिसमाप्यते।।**[13]

अर्थात् द्रव्ययज्ञ– कर्मयज्ञ बहुत उत्तम है। परन्तु ज्ञानयज्ञ तो बहुत ही श्रेष्ठ है। ज्ञान के सामने सब कर्म समाप्त हो जाते है। शास्त्रों में इस प्रकार ज्ञान यज्ञ का माहात्म्य बतलाया गया है।

3. **उपासनायज्ञ :–** अब तक जिस प्रकार के सार्वजनिक, सुखसाधक यज्ञों का वर्णन कर आयें हैं, उनको निःस्वार्थ भाव से करने वाला सब कुछ देकर भी 'इदं न मम' अर्थात् यह मेरा नहीं है। कहने वाला वैदिकों के मत से मोक्षगामी हो जाता है। मनुस्मृति में लिखा है कि

महायज्ञैस्य यज्ञैश्च ब्रह्मीयं क्रियते तनुः।

अर्थात् पंचमहायज्ञों और अन्य यज्ञों से यह शरीर ब्राह्मी बनाया जाता है। ब्राह्मी शरीर का मतलब ब्रह्मयोग्य ही बनाना है। फल की आशा त्याग करके परोपकार दृष्टि से सार्वजनिक लोकसेवा करने से मोक्ष होता है। इस बात को गीता ने भी माना है। गीता में लिखा है कि

Sampreshan
UGC CARE GROUP 1
https://sampreshan.info/
ISSN: 2347-2979
Vol. 17, Issue No. 1, March 2024

सन्यासः कर्मयोगश्चः निःश्रेयसकरावुभौ
तयोस्तु कर्मसन्यासात्कर्मयोगो विशिष्यते।।[14]

अर्थात् सन्यासरूपी ज्ञानमार्ग और लोकसेवारूपी कर्ममार्ग दोनों मोक्ष को देने वाले हैं। परन्तु ज्ञानमार्ग से कर्ममार्ग विशेषरूप से उपयोगी है। इस उपासना यज्ञ का वर्णन वेदों, उपनिषदों, गीता आदि में प्राप्त होता है। इसको योगयज्ञ भी कहते है। सन्ध्या योगयज्ञ ही है। उपासनायज्ञ का सम्बन्ध जप, तप, वैराग्य, ज्ञान, भक्ति और ईश्वरपरायणता आदि से ही है। इसीलिए उपासना यज्ञ के विषय में गीता उपदेश करती है कि–

ब्रह्मार्पणं ब्रह्म हविर्ब्रह्माग्नौब्रह्मणा हुतम्।
ब्रह्मैव तेन गन्तव्यं ब्रह्म कर्मसमाधिना।।[15]
अपाने जुह्वति प्राणं प्राणेऽपानं तथापरे।
प्राणापानगती रूदध्वा प्राणायामपरायणाः।।[16]

अर्थात् ब्रह्म ही हवि है, वही अग्नि है, वही हुत पदार्थ है और यह सब उसी में जाता है। समाधिवालों का यही ब्रह्मकर्म है। अपान को प्राण में और प्राण को अपान में अर्थात् प्राणायामपरायण दोनों की गतियों को रोककर ध्यान करें और स्तुतिप्रार्थना करते रहे। क्योंकि मनुस्मृति में कहा गया है कि –

विधियज्ञाज्जपयज्ञों विशिष्टो दर्शभिर्गुणैः अर्थात् कर्मयज्ञ से यह उपासनायज्ञ– जपयज्ञ – दश गुना उत्तम है। इस उपासना यज्ञ से सम्बन्ध रखनेवाली समधि की दशा का वर्णन करते हुए उपनिषद् कहते है–

समाधिनिर्धूतमलस्य चेतसो निवेशितस्यात्मनि यत्सुखं भवेत्।
न शक्यते वर्णयितुं गिरा तदा स्वयं तदन्तःकरणेन गृहयते।।

अर्थात् धुले हुए मनों के बाद समाधि में प्रवेश करने से आत्मा को जो सुख प्राप्त होता है, वह वाणी से वर्णन नहीं किया जा सकता। वह सुख तो अपने हृदय से ही अनुभव होने योग्य है। इस प्रकार से इस उपासना यज्ञ को वर्णन किया गया है। यह उपासना यज्ञ सब

Sampreshan
UGC CARE GROUP 1
https://sampreshan.info/
ISSN: 2347-2979
Vol. 17, Issue No. 1, March 2024

यज्ञों में श्रेष्ठ है। क्योंकि इस यज्ञ से ही ज्ञान की सब उलझने सुलझ जाती है। भगवद्गीता में लिखा हैं कि

भिद्यते हृदयग्रन्थि छिद्यन्तेसर्वसंशयाः।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे।।[17]

अर्थात् परमात्मा का साक्षात्कार होते ही हदय की गाँठ खुल जाती है, सब संशय नष्ट हो जाते हैं और कर्मों का क्षय हो जाता है। इस स्थिति में पहुँचकर समस्त विश्वब्रह्माण्ड का निर्भ्रान्त ज्ञान हो जाता है। इसीलिए वेदों में वह युक्ति बतलाई गई है, जिसका प्रयोग करने से मनुष्य निर्भ्रान्त ज्ञान प्राप्त कर सकता है।

**यज्ञों के प्रकार :–** वेदों में अनेक प्रकार के यज्ञों का वर्णन मिलता हैं, किन्तु उनमें निम्नलिखित पाँच प्रकार के यज्ञ प्रधान माने गये हैं–

स एष यज्ञः पंचविधः अग्निहोत्रम्, दर्शपूर्णमासौ, चातुर्मास्यानि पशुः सोमः, अति।[18]

अर्थात् अग्निहोत्र, दर्शपूर्णमास, चातुर्मास्य, पशु और सोम ये पाँच प्रकार के यज्ञ कहे गये है। गौतमधर्मसूत्रकार ने पाकयज्ञ, हविर्यज्ञ और सोमयज्ञ भेद से तीन प्रकार के यज्ञों का भेद दिखलाकर प्रत्येक के सात–सात भेद करके 21 प्रकार के यज्ञों का उल्लेख किया है। इसमें स्मार्त्त सात यज्ञ संस्थाओं का उल्लेख गृह्यसूत्रों और धर्मसूत्रों में मिलता है। अग्निहोत्र से लेकर सोम संस्थान तक 14 यज्ञों का उल्लेख कात्यायनादि श्रौतसूत्रों में मिलता है। वर्तमान समय में श्रौतयज्ञों का प्रचार तो नहीं के बराबर हैं। गृह्यसूत्रोंक्त पाकयज्ञों का प्रचार किसी न किसी रूप में अवश्य प्रचलित हैं।

गौतमधर्मसूत्र[19] में यज्ञों का उल्लेख निम्नलिखित हैं– औपासनहोः, वैश्वदेवम्, पार्वणम्, अष्टका, मासिक श्राद्धम्, श्रवणा, रालगव, इतिसप्त पाकयज्ञसंस्थाः। अग्निहोत्रम्, दर्शपूर्णमासौ, आग्रयणम्, चातुर्मास्यानि, निरूढपशुबन्धः, सौत्रामणी, पिण्डपितृयज्ञादयो,

Sampreshan
UGC CARE GROUP 1
https://sampreshan.info/
ISSN: 2347-2979
Vol. 17, Issue No. 1, March 2024

दर्विहोमा इति सप्त हविर्यज्ञसंस्थाः। अग्निष्टोम, अव्यग्निष्टोमः, उक्थ्यः षोडशी, वाजपेयः अतिरात्रः, आप्तोर्याम इति सप्त सोमसंस्थाः।

उपर्युक्त सभी प्रकार के यज्ञ सात्विक, राजसिक और तामसिक भेद से तीन प्रकार के कहे गये है। जो यज्ञ निष्काम भाव से किया जाता है, उसे सात्विक यज्ञ कहते है।

अफलाकांक्षिभिर्यज्ञो विधिदृष्टो य इज्यते।
यष्टव्यमेवेति मनः समाधाय स सात्विकः।।[20]

ये यज्ञ सकाम अर्थात् किसी फल–विशेष की इच्छा से किया जाता है उसे राजसिक यज्ञ कहते हैं।

अभिसन्धाय तु फलं दम्भार्यमपि चैव यत्।
इज्यते भरतश्रेष्ठतं यज्ञ विद्धि राजसम्।।[21]

जो यज्ञ शास्त्रों के विरूद्ध किया जाता है उसे तामसिक यज्ञ कहते है।

विधिहीनमसृष्ठान्नं मन्त्रहीनमदक्षिणम्।
श्रद्धाविरहितं यज्ञं तामसंपरिचक्षते।।[22]

इनमें सात्विक यज्ञ का अनुष्ठान सर्वोत्तम कहा गया है। अतः यज्ञ का मुख्य उद्देश्य सात्विकता को लेकर ही होना चाहिए। शास्त्रों में सात्विक यज्ञ का महान फल लिखा है।

श्रौत–स्मार्त्तादि सभी प्रकार के यज्ञों में कुछ यज्ञ नित्य, कुछ नैमित्तिक और कुछ काम्य होते हैं। उनमें नैमित्तिक और काम्य यज्ञ करने के लिए तो द्विज स्वतन्त्र है अर्थात् वह अपनी श्रद्धा–भक्ति तथा आर्थिक परिस्थिति के अनुकूल यज्ञ करें अथवा न करें। किन्तु नित्य यज्ञ तो करना ही होता है। उस नित्य यज्ञ का नाम पंचमहायज्ञ है। पंच महायज्ञ के न करने से मनुष्य पंचसूनाजन्य दोषों से छुटकारा कथमपि नहीं प्राप्त कर सकता। (प्रत्येक गृहस्थ के यहाँ चूल्हा, चक्की, झाड़ू, ओखली ओर जल का पात्र ये पाँच हिंसा के स्थान है। इनको काम में लाने वाला गृहस्थ पासे से बँधता है। इनसे मुक्त होने के लिये महर्षियों ने पंचमहायज्ञ प्रतिदिन करने के लिए कहे हैं।[23] अतः पंचसूना दोषों से छुटकारा पाने के

लिए पंचमहायज्ञ का अनुष्ठान परमआवश्यक और नित्य कर्तव्य है। यह पंचमहायज्ञ अन्य यागों की तरह न तो अधिक द्रव्य साध्य है और न अधिक समयसाध्य ही है।

1. **ब्रह्मयज्ञ :–** वेदों के पठन–पाठन को ब्रह्म–यज्ञ कहते है। वेद में कर्मकाण्ड, उपासनाकाण्ड और ज्ञानकाण्ड में '**ज्ञान**' की ही प्रधानता और परमावश्यकता बतलायी गयी है। ज्ञान के ही कारण जीवान्तर की अपेक्षा से मनुष्य–देह उत्तम माना जाता है। शास्त्रोक्त सदाचार तथा धर्मानुष्ठान में तत्पर रहना ही मनुष्य की मनुष्यता है और वही मनुष्य वास्तविक मनुष्यत्व का अधिकारी समझा जाता है। इनके बाद कर्मकाण्ड द्वारा अन्तःकरण की शुद्धि हो जाने पर मनुष्य उपासनाकाण्ड का अधिकारी बनता है, तदन्तर भगवत्कृपा कटाक्ष के लेश से ज्ञान प्राप्त कर मुक्त हो जाता है। यह मनुष्यों का सामान्य उन्नति क्रम है। क्रमिक उन्नति में ज्ञान का प्राधान्य है। अतः सभी अवस्थाओं में ज्ञान की आवश्यकता है। इसलिये प्रथमावस्था में भी ज्ञान के बिना असदाचरण का परित्याग तथा धर्मानुष्ठान में प्रवृत्ति कदापि नहीं हो सकेगी। ''बलवानिन्द्रियग्रामों विद्वांसमपि कर्षति।''[24] इस उपदेश के अनुसार बलवान् इन्द्रिय समूह उसमें प्रतिबन्धक अवश्य है, तथापि इन्द्रियाँ प्रथमावस्था में मनुष्य को अपनी ओर प्रवृत्त करती है नकि धर्मानुष्ठानादि में। इसी समय माता पिता तथा गुरूजन भी धर्मानुष्ठान में प्रवृत्त तथा अधर्मानुष्ठान से निवृत्ती करते हैं। इस प्रकार सभी अवस्थाओं में ज्ञान की ही प्रधानता सिद्ध होती है। अतएव ज्ञानयज्ञ रूप स्वाध्याय अर्थात् वेद–शास्त्रों का पठन–पाठन करना चाहिये। अशक्ति में गायत्री–जपमात्र करना चाहिये। ब्रह्मयज्ञ करने से ज्ञान की वृद्धि होती है। ब्रह्म यज्ञ करने वाला मनुष्य ज्ञानप्रद महर्षिगण का अनृणी और कृतज्ञ हो जाता है।
2. **देवयज्ञ :–** अपने इष्टदेव की उपासना के लिये परब्रह्म परमात्मा के निमित्त अग्नि में किये हुए हवन को देवयज्ञ कहते हैं।

यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत्।
यत्तयस्यसि कौन्तेय तत्कुरूष्व मदर्पणम्।।[25]

भगवान् के इस वचन से सिद्ध होता है कि परब्रह्म परमात्मा ही समस्त यज्ञों के आश्रयभूत है। इसलिये ब्रह्मयज्ञ में ऋषिगण, पितृयज्ञ में अर्यमादि नित्य पितृगण और परलोकगामी नैमित्तिक पितृगण भूतयज्ञ में देवरूप अनेक प्राणियों को जानकर 'यद्यद्विभूतिमत्सत्वम्'[26] गीतोक्त भगवद् वचन के अनुसार ईश्वर–विभूतिधारी देवताओं की जो पूजा की जाती है, वह सर्वव्यापक अन्तर्यामी परमात्मा की अर्चना के अभ्यास के लिये ही की जाती है।

**भूतयज्ञ :–** कृमि, कीट, पतंग, पशु और पक्षी आदि की सेवा को 'भूतयज्ञ' कहते है। ईश्वररचित सृष्टि के किसी भी अंग की उपेक्षा कभी नहीं करनी चाहिए, क्योंकि सृष्टि के सिर्फ एक ही अंग की सहायता से समस्त अंगों की सहायता समझी जाती है। अतः भूतयज्ञ भी परमधर्म है। प्रत्येक प्राणी अपने सुख के लिये अनेक भूतों या जीवों को प्रतिदिन क्लेश या कष्ट देता है, क्योंकि ऐसा हुए बिना क्षणमात्र भी शरीरयात्रा नहीं चल सकती। प्रत्येक मनुष्य के निःश्वास–प्रश्वास, भोजन–प्राशन, बिहार–संचार आदि में अगणित जीवों की हिंसा होती है। निरामिष भोजन करने वाले लोगों के भोजन के समय भी अगणित जीवों का प्राण–वियोग होता हैं, अमिषभोजियों की तो कहना ही क्या हैं? अतः भूतों से उऋण होने के लिये भूतयज्ञ करना आवश्यक है।

3. **पितृयज्ञ :–** अर्यमादि नित्य पितरों की तथा परलोकगामी नैमित्तिक पितरों की पिण्डप्रदानादि से किये जाने वाले सेवारूप यज्ञ को पितृ यज्ञ कहते है। सन्मार्ग प्रवर्तक माता–पिता की कृपा से असन्मार्ग से निवृत्त होकर मनुष्य ज्ञान की प्राप्ति करता है; फिर धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष आदि सकल पदार्थों को प्राप्त कर मुक्त हो जाता है। ऐसे दयालु पितरों की तृप्ति के लिये, उनके सम्मान के लिये अपनी कृतज्ञता के प्रदर्शन तथा उनसे उऋण होने के लिऐ पितृयज्ञ करना नितान्त आवश्यक है। पितृयज्ञ से समस्त लोकों की तृप्ति और पितरों की तुष्टि की अभिवृद्धि होती है।
4. **मनुष्य यज्ञ :–** क्षुधा से अत्यन्त पीड़ित मनुष्य के घर आ जाने पर उसकी भोजनादि से की जाने वाली सेवा रूप यज्ञ को मनुष्य–यज्ञ कहते है। अतिथि के घर आ जाने पर वह चाहे

Sampreshan
UGC CARE GROUP 1
https://sampreshan.info/
ISSN: 2347-2979
Vol. 17, Issue No. 1, March 2024

किसी जाति या किसी भी सम्प्रदाय का हो, उसे पूज्य समझकर उसकी पाद्य और अर्ध्यादि से समुचित पूजा कर उसे अन्नादि देना चाहिये। इस विषय की पुष्टि भगवान् मनु ने भी अपनी स्मृति के तीसरे अध्याय में विशुद्ध रूप से किया है।[27]

प्रथमावस्था में मनुष्य अपने शरीरमात्र के सुख से अपने को सुखी समझता है, फिर अपने पुत्र, मित्रादि को सुखी देखकर सुखी होता है। तदनन्तर स्वदेशवासियों को सुखी देखकर सुखी होता है। इसके बाद पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने पर समस्त लोक समूह को सुखी देखकर सुखी होता है। मनुष्य–यज्ञ से धन, आयु, यश और स्वर्गादि की प्राप्ति होती है।

**यज्ञ की आवश्यकता :–** कर्म–मीमांसा के प्रवृत्त होने पर मानव–देह धारण करते ही द्विज ऋषि ऋण, देव–ऋण, और पितृ–ऋण इन तीन प्रकार के ऋणों से ऋणी बन जाता है।

ऋणैस्त्रिभिर्द्विजो जातो देवर्षि पितृऋणां प्रभो।
यज्ञाध्ययनपुत्रैस्तान्यनिस्तीर्य त्यजन् पतेत्।।[28]

द्विज देवता, ऋषि और पितर इन तीनों का ऋण लेकर ही उत्पन्न होते हैं। इनके ऋणों से मुक्त होने के लिए यज्ञ, अध्ययन और सन्तानोत्पत्ति करना आवश्यक है। इनसे उऋण हुए बिना जो संसार का त्याग करता है, उसका पतन हो जाता है। इसी प्रकार का वर्णन तैत्तिरीय संहिता में भी मिलता है–

ऋणैर्ऋणवान् जायते ब्रह्मचर्येण ऋषिभ्यो यज्ञेन देवेभ्यः प्रजया पितृभ्यः।[29]

अर्थात् द्विज जन्म लेते ही ऋषि ऋण, देव ऋण और पितृ ऋण इन तीन प्रकार के ऋणों से ऋणी बन जाता है। ब्रह्मचर्य के द्वारा ऋषि–ऋण से, यज्ञ के द्वारा देव–ऋण से और सन्तति के द्वारा पितृ–ऋण से मुक्त हो जाता है। भगवान् मनु ने भी ''ऋणानि ऋणाय पाकृत्य[30]'' इत्यादि वाक्यों द्वारा उपर्युक्त ऋण–त्रय के अपाकरण को ही मनुष्य का प्रधान कर्म बतलाया है। ऋणत्रय में देव–ऋण का भी उल्लेख है। देव–ऋण से मुक्त होने के लिए उपर्युक्त तैत्तिरीय श्रुति ने स्पष्ट बतला दिया है कि यज्ञों के द्वारा ही देव–ऋण से मुक्ति होती है। वह

Sampreshan
UGC CARE GROUP 1
https://sampreshan.info/
ISSN: 2347-2979
Vol. 17, Issue No. 1, March 2024

यज्ञादि कर्म अत्यन्त पावन तथा अनुपेक्षणीय है, जैसा कि अनेक मत–मतान्तरों का निरास करते हुए गीता के परमाचार्य स्वयं भगवान श्रीकृष्ण ने कहा हैं–

यज्ञदानतपः कर्म न त्याज्यं कार्यमेव तत्।
यज्ञो दानं तपस्चैव पावनानि मनीषिणाम्।।[31]

इतना ही नहीं, जगत् कल्याण की मीमांसा तथा कर्तव्य–सत्पथ का निश्चय करते हुए भगवान् ने स्पष्ट कहा है कि यज्ञिय कर्मों के अतिरिक्त समस्त कर्म लोक–बन्धन के लिए ही हैं–

यज्ञार्थात्कर्मणोऽन्यत्र लोकोऽयं कर्मबन्धनः।।[32]

इस प्रकार अनेक श्रुति–स्मृति ग्रन्थों में तथा उपनिषदों में यज्ञ को मानव का प्रधान धर्म कहा गया है। अतः प्रत्येक द्विज को यज्ञ करते रहना चाहिये। जो लोग यज्ञ के वास्तविक रहस्य और महत्त्व को न समझकर यज्ञ के प्रति अश्रद्धा रखते है अथवा यज्ञ नहीं करते हैं वे नष्ट हो जाते हैं। इस विषय में शास्त्रों में आज्ञा हैं–

नास्त्ययज्ञस्य लोको वे नायज्ञो विन्दते शुभम्।
अयज्ञो न च पतात्मा नश्यतिच्छिन्नपर्णवत्।।

अर्थात् यज्ञ न करने वाले पुरूष पारलौकिक सुखों से तो वंचित रहते ही हैं, वे ऐहिक कल्याणों की भी प्राप्ति नहीं कर पाते। अतः यज्ञहीन प्राणी आत्म–पवीत्रता के अभाव से छिन्न–भिन्न पत्तों की तरह नष्ट हो जाते है।

**उपसंहार :–** यज्ञ के द्वारा हम उस परम यज्ञ–स्वरूप प्रभु के पास पहुँचते है, जिसने सृष्टि को यज्ञ के साथ ही उत्पन्न किया था और हम सबको आज्ञा दी थी कि हम इसी यज्ञ–प्रणाली द्वारा अपने अभ्युदय में संलग्न हो। यही यज्ञ हमारे लिये कामधेनु है। गीता के शब्दों में या द्वारा ही हम दिव्य शक्तियों को भावित और प्रसन्न कर सकते है। इस प्रकार परस्पर भावित होते हुए हम सब परम श्रेय को अर्थात् कल्याण को प्राप्त करते है। यज्ञ को श्रेष्ठतम कर्तव्य कहा गया है।

Sampreshan
UGC CARE GROUP 1
https://sampreshan.info/
ISSN: 2347-2979
Vol. 17, Issue No. 1, March 2024

यज्ञ की यह भावना वैदिक संस्कृति का मेरूदण्ड है। व्यक्ति तथा विश्व का कल्याण इसी भावना में निहित हैं, हम सबको इसी दिशा में प्रयाण करना है। हम सब मानवयोनि में पुण्यकर्म अर्जित करते हुये उर्ध्व गति प्राप्त करने के लिये आये हैं। यज्ञ ही इसका एकमात्र साधन है। जीवन इसी यज्ञभावना से भावित तथा यज्ञिय कर्मों से मंडित रहना चाहिये।

गीता में यज्ञ का महात्म्य बतलाते हुए कहा गया हैं कि–

नायं लोकोऽस्ति अयज्ञस्य कुतोऽन्यः कुरूसत्तम।[33]

अर्थात् यज्ञ के बिना यह लोक भी सिद्ध नहीं होता, परलोक की तो बात ही क्या हैं?

श्रीमद्भगवद् गीता के तृतीय तथा चतुर्थ अध्यायों में यज्ञ का विशेष रूप से वर्णन है। यज्ञ, परमात्मा, उसके प्रतिनिधि देवताओं तथा मनुष्यों के बीच आदान–प्रदान की प्रेमयुक्त शुद्ध प्रक्रिया है। मनुष्य को सदा देवताओं तथा परमात्मा को याद करते हुए अपने संपूर्ण कर्म उन्हें अर्पित करना चाहिए। कर्म की शुद्धता तथा धर्म का आचरण परम यज्ञ है।

---

[1] विहंगम योग सन्देश पत्रिका पृष्ठ सं 54–55।
[2] यजुर्वेद, 17/21
[3] विष्णुधर्मोत्तर पुराण 2/104।
[4] मनुस्मृति, 1/23।
[5] ऋचो यँजूषि सामानि निर्ममे यज्ञसिद्धये। ब्रह्मपुराण। 1/49।
[6] अथर्ववेद 11–7।
[7] गोपथब्राह्मण। 5/5/8।
[8] शतपथ ब्राह्मण 2/2।/4/19।
[9] तैत्तिरीय संहिता 2/2/5।
[10] मनुस्मृति 22107।
[11] शतपथ ब्राह्मण। 11/5/7।2।
[12] ऐतरेय ब्राह्मण 5/1/1।
[13] भगवद्गीता, 4/33।
[14] भगवद्गीता, 5/2
[15] भगवद्गीता, 4/24।
[16] भगवद्गीता, 4/29।

[17] भगवद्गीता, 1/21
[18] ऐतरेय ब्राह्मण, 2/13।
[19] गौतमधर्मसूत्र 8।18।
[20] गीता 17/11।
[21] भगवद्गीता, 17/12।
[22] भगवद्गीता, 17/13
[23] मनुस्मृति 3/68–69।)
[24] मनु 2/215।
[25] भगवद्गीता, 9/27।
[26] भगवद्गीता, 10/41।
[27] मनुस्मृति, 3/99–102।
[28] श्रीमद्भागवत, 10/84/39।
[29] तैत्तिरीय संहिता, 3/10/5।
[30] मनुस्मृति, 6/35।
[31] भगवद्गीता, 18/5।
[32] भगवद्गीता 3/9।
[33] भगवद्गीता, 10/2।